वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल २, मंगलवार

दि. २२-२-१९६६, ढाल-६, श्लोक-८,९. प्रवचन नं. ५०

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' (है)। 'बुधजन' की 'छहढाला' थी, पहले 'बुधजन' ने 'छहढाला' बनाई थी, वह भी है, लेकिन उसका थोड़ा आधार लेकर 'दौलतरामजी' ने अपने से शास्त्र के न्याय से यह 'छहढाला' बनाई। उसकी छठवीं ढाला की आठवीं गाथा चलती है, आठवीं गाथा।

देखो ! वीतराग का मूल सन्देश यह है, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव का और सन्तों, 'सीमंधर' भगवान आदि तीर्थंकरों, मुनियों जो कोई आत्मध्यानी-ज्ञानी हो गये, उनका सन्देश-आदेश यह है कि, यह आत्मा... यहाँ स्वरूपाचरण चारित्र की बात चलती है। जिसको संवर, निर्जरा होती है और मोक्ष का उपाय जिसमें शुरू होता है, उसका क्या स्वरूप है, वह बात यहाँ स्वरूपाचरणचारित्र के कथन में करते हैं। समझ में आया ?

देह, वाणी, मन तो जड़ है, तो उसकी क्रिया या हिलने-चलने से या उसकी पर्याय से आत्मा को पुण्य-पाप और संवर, निर्जरा कभी होते नहीं। पर की पर्याय से पुण्य-पाप, संवर, निर्जरा होते नहीं। जड़ की पर्याय से क्या हो ? उसीप्रकार जड़कर्म से भी पुण्य-पाप और संवर, निर्जरा होते नहीं। अपनी पर्याय में जो शुभ और अशुभभाव विकार करते हैं, वह उपाधि-विभावभाव है, वह बन्ध का कारण है। उसका अभाव करने को स्वरूपदृष्टिपूर्वक स्वरूप का आचरण जो शुद्ध उपयोग है, वही मोक्ष का कारण अथवा संवर, निर्जरारूप है। अथवा यह शुद्ध उपयोग जो है, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की-मोक्षमार्ग के जो तीन अवयव कहने में आते हैं, उन तीनों की एकता (उससे संवर, निर्जरा होते हैं)।

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य पिंड प्रभु (है), उसकी अन्तर में दृष्टि करके शुद्ध स्वरूप का अन्तर अनुभव करके, प्रतीत करना, उसका नाम मोक्षमार्ग का पहला तीन बोल-

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका पहला अवयव सम्यग्दर्शन है। और आत्मा का अन्तर्मुख होकर ज्ञान करना वह मोक्षमार्ग का दूसरा-दुजा भाग अथवा दूसरा अवयव है और साथ में शुभ और अशुभ उपयोग अशुद्ध आचरण रहित स्वरूप में शुद्ध में एकाकार होकर स्वरूपाचरण करना, वह स्वरूपाचरण का शुद्ध उपयोगभाव है, वही संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! समझ में आया ? बीच में शुभभाव, निश्चय दृष्टि और अनुभव होनेपर भी, जब तक वीतरागभाव पूर्ण न हो, तब तक बीच में दया, दान, भक्ति, पूजा, प्रभावना, यात्रा (के) शुभभाव आये बिना रहते नहीं, परन्तु वह भाव पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्धपरिणाम जो अबन्ध मोक्षमार्ग, वह तो आत्मा के अवलम्बन से श्रद्धा-ज्ञान में शान्ति, एकाग्रता से होता है। पर के आश्रय से मोक्षमार्ग-स्वआश्रय(रूप) जो दशा (होती है), वह पर के आश्रय से होती नहीं। आहा..हा... ! सूक्ष्म बात है, भाई ! जिसे आत्मा की शान्ति, स्वतंत्रता, सम्यग्दर्शन चाहिए उसकी बात है। अनादिकाल से नौंवे ग्रैवेयक तक गया परन्तु आत्मा चीज क्या है, उसका अन्तर में अनुभव क्या है ? उसका अनुभव उसने किया नहीं। अनुभव का अनुभव नहीं किया। आहा..हा... !

कहते हैं, पहले जब सम्यग्दर्शन होता है, तब शुद्ध उपयोग में होता है। सूक्ष्म बात है। चौथे गुणस्थान से जो मोक्षमार्ग का पहला भाग (है)। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौं तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान शुभराग है, शुभ उपयोग है, उसको व्यवहार मोक्षमार्ग कहते हैं। कब ? कि, अपने शुद्ध स्वभाव के आश्रय से निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त हुआ हो तो उस शुभभाव को व्यवहार का आरोप देने में आता है। आहा.. ! समझ में आया ? बात अगम्य बात है। क्या कहते हैं ? देखो ! यहाँ तक कल आये थे। यहाँ तक आये हैं, देखो !

भगवान आत्मा '**निजमांहि...**' निजमांहि। तीन शब्द आये हैं, फिर से लेते हैं। '**निजमांहि...**' वस्तु भगवान ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य प्रभु, निजमांहि-अपने आत्मा में अपने लिये। अपने लिये संप्रदान है और अपने द्वारा। संप्रदान अर्थात् दान दिया। अपना शुद्ध स्वरूप अन्तर दृष्टि करके अपने में रखा। शुद्धभाव प्रगट करके अपने में रखा। अपने से लिया और अपने को दिया। समझ में आया ? अन्तर की यह बात समझे बिना कभी उसका छूटकारा तीनकाल में नहीं होगा।

चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द, ज्ञानादि गुणसंपन्न प्रभु, उसमें दृष्टि लगाकर, निजामांहि- अपना आधार (लेकर), वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. जैसे शीतल बर्फ की शिला है, उसमें रहने से शीतलता होती है। ऐसे भगवान आत्मा अकषाय वीतरागस्वरूप शीतल.. शीतल.. अरूपी चैतन्यशीला है। रूप कहते हैं, उसका रूप(ऐसा है)।

मुमुक्षु :- किसका ?

उत्तर :- आत्मा का अरूपी भाव है, अरूपी भी स्वरूप है। जैसे यह रंग, गन्ध, रस, स्पर्श जैसा मिट्टी का स्वरूप है, वह रूपी स्वरूप है। भगवान आत्मा अरूपी भी स्वरूप है। अरूपी.. अरूपी अवस्तु नहीं है। आहा..हा..! अरूपी अर्थात् कुछ नहीं, ऐसा नहीं। उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है और पुण्य और पाप का रागभाव शुभाशुभ विकार होता है, वह विकार उसमें नहीं, द्रव्य में-वस्तु में नहीं (है)। वस्तु तो शीतल.. शीतल.. अकषाय वीतरागभावरूप से आनन्दकन्द में बिराजमान स्वतत्त्व है। अरूपी स्वरूप पूर्णानन्द से ठसाठस भरा है। आहा..हा...! चीज है या नहीं ? वस्तु है या अवस्तु है ? शरीर, वाणी, रजकण भिन्न जड़ मिट्टी है।

मुमुक्षु :- कब ?

उत्तर :- अभी। कब क्या ? अभी की बात चलती है। कर्म के रजकण जड़ मिट्टी-धूल भिन्न हैं। और अभी यहाँ पुण्य और पाप का शुभाशुभराग, एक क्षण का कृत्रिम विकृति विभावभाव है, उसके अलावा एक समय में भगवान आत्मा ज्ञान का पिंड, ज्ञान की भेली, आनन्द का रसकन्द, अनाकूल शान्ति अर्थात् चारित्र का पिंड आत्मा अन्दर में है। आहा..हा...! उसमांहि-उसमें अन्तर एकाकार होना। भैया ! पुस्तक लिया है कि नहीं ?

'**निजमांहि...**' निज अपने लिये। अन्तर स्वरूप में शुद्धता पुण्य-पाप का शुभाशुभभाव आचरण का लक्ष्य छोड़कर के भगवान आत्मा में-वस्तु में बिराजमान शीतल.. शीतल.. शान्त प्रभु (का अवलम्बन लेना)। 'शीतलनाथ' भगवान, 'शान्तिनाथ' भगवान, यह आत्मा (है)। शान्त वीतरागी पिंड प्रभु, अनादि-अनन्त ध्रुव सत् अरूपी कन्द रसकन्द, उसमें दृष्टि लगाना और अपने लिये (रखना)। जो दृष्टि लगाकर निर्मल दशा प्रगट हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान शान्ति को अपने

में रखना। कोई पुण्य-पाप हिस्सा ले जाये, ऐसा नहीं। आहा..हा... ! भाई ! कठिन बात, भाई ! पैसे में तो पुत्रादि सब हिस्सा ले जाये।

'**निजकर**...' अपने द्वारा, अपने द्वारा (अर्थात्) क्या कहते हैं ? छहढालाकार 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं कि, भगवान परमेश्वर का संदेश-आदेश (यह है कि), भगवान अपने द्वारा.. शुभाशुभ विकल्प उठते हैं उसके द्वारा नहीं, शरीर द्वारा नहीं, मन द्वारा नहीं, काया द्वारा नहीं, देव-गुरु-शास्त्र पर के द्वारा नहीं। निज-अपने द्वारा। निर्विकल्प शुद्ध भगवान आत्मा अपने शुद्धभाव द्वारा आत्मा को, अपने शुद्धस्वभाव को, यह कर्म (कारक हुआ)। स्वयं अपने से ग्रहण करता है। अन्दर में ग्रहण किया। अपने में, अपने से, अपने लिये, अपना कार्य शुद्ध स्वभाव का अन्दर करते हैं, वह अपनी धार्मिक क्रिया (है)। उसका नाम स्वरूप शुद्ध उपयोग, शुद्धाचरण वही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? देखोन ! यह तो 'छहढाला' में कहते हैं।

मुमुक्षु :- मूलनायक..

उत्तर :- मूलनायक ही यह है। भगवान को २५०० वर्ष हुए न ? 'सीमंधर' भगवान महाविहेद में बिराजते हैं। वर्तमान त्रिलोकनाथ बिराजते हैं। यहाँ बिराजमान (किये वह) तो स्थापना निक्षेप है। साक्षात् तीर्थंकरदेव महाविदेह में प्रभु (बिराजते हैं)। ५०० धनुष की देह (है)। अनन्त केवलज्ञान स्वदेह, शरीर ५०० धनुष (का है वह) परदेह, आयुष्य देह की एक करोड़ पूर्व की स्थिति, आत्मा की अनादि अनन्त स्थिति (है)। भगवान महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान समवसरण में बिराजमान वर्तमान हैं। समझ में आया ? हमने कहा न कि, भगवान बिराजते हैं, लेकिन यहाँ दूर है। दूर देश में भगवान बिराजते हैं। धर्मी के अन्तर में समीप में बिराजते हैं। आहा..हा... !

'सीमंधर'.. 'सीमंधर' सीम अर्थात् मर्यादा को धरनेवाले। 'सीमंधर' भगवान श्री 'सीमंधर' अर्थात् भगवान आत्मा 'सीमंधर' सीम (अर्थात्) अपनी मर्यादा। पुण्य-पाप विकार रहित की अपनी मर्यादा में भगवान आत्मा 'सीमंधर' अपना आत्मा बिराजता है, उसको ही परमार्थ से 'सीमंधर' कहते हैं। ये स्थापना (है)। भगवान भाव निक्षेप से वहाँ बिराजते हैं। समझ में आया ? 'दौलतरामजी' (छहढाला) में यह चलता है, देखो ! भगवान ! यहाँ तक तो

कल आया था।

यह बात अनन्त काल से की नहीं। वह बात कोई अपूर्व होती है या नहीं ? अनन्त काल में किया वही प्रकार हो तो कोई अपूर्व नहीं है। अपूर्व अर्थात् पूर्व में नहीं की हो ऐसी चीज हो तो अपूर्व कहते हैं। अनन्तबार पंच महाव्रत की बाह्य की क्रियाकांड तपस्या, महिना का उपवास (आदि तो) अनन्त अनन्त बार किया है। समझ में आया ? भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ अपना निज स्वभाव, उसमें एकाकार होकर निर्विकल्प शुद्ध उपयोग द्वारा आत्मा का अनुभव करना, उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र अथवा उसका नाम मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। आहा..हा... ! अब तीन बोल दूसरे लेंगे।

'**गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान...**' क्या कहते हैं ? ये ज्ञानादि गुण हैं। अन्दर ज्ञानादि, राग पुण्य-पाप नहीं। ज्ञान.. समझन.. समझन का पिंड वह ज्ञानगुण (है)। आत्मा गुण को धरनेवाला (है)। जैसे सुवर्ण-गुणी और पीलापन, चीकनापन गुण (है)। ऐसे भगवान आत्म ज्ञान, दर्शन, आनन्दगुण और आत्मा गुणी (है)। और ज्ञाता मैं जाननेवाला और ज्ञान का विषय। ज्ञान का विषय स्व। '**ज्ञान ज्ञेय मंझार कछु भेद न रह्यो।**' आहा..हा... ! भाई ! आहा..हा... ! (उनको) तो यह कंठस्थ है। कितने साल से कंठस्थ है, पूरी 'छहढाला' कंठस्थ है।

यह चौथे गुणस्थान से शुरू होता है, हाँ ! कोई ऐसा कहे कि, आठवें और सातवें (गुणस्थान की) बात है, ऐसा नहीं। प्रथम अनुभव के काल में निर्विकल्प स्वभाव की दृष्टि पहली जब होती है, तब आत्मा गुणी और ज्ञानगुण और मैं ज्ञान और मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे ज्ञान का विषय ज्ञेय, ऐसा भेद का विकल्प छूट जाता है। आहा..हा... ! अरे.. ! भगवान ! यह बात लोगों ने कहीं मान रखी है। वस्तु कहीं पर है और मार्ग और कहीं है।

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर 'सीमंधर' प्रभु... 'कुन्दकुन्दाचार्य' वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। बाद में शास्त्र की रचना की। 'मद्रास' से ८० मील दूर 'वन्देवास' है। (उससे आगे) ५० मील (दूर) 'पौन्नूरहील' है। वहाँ रहते थे। गुफा (में) ध्यान में (रहते थे)। (वहाँ से) भगवान के पास गये थे, आठ दिन बाद आकर रचना की। वे सन्देश लाये तो नाम आया न ? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।' 'गौतम' गणधर के

बाद 'कुन्दकुन्दाचार्य' का नाम आया है। महान समर्थ धुरंधर आचार्य (हुए)। पंचम काल के तीर्थंकर जैसा का 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ने किया है। समझ में आया ? और उसकी टीका करनेवाले 'अमृतचंद्राचार्य' उनके गणधर (है)। ऐसी टीका... ऐसी टीका भरतक्षेत्र में (और) नहीं। समझ में आया ? 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'पंचास्तिकाय' की टीका और 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' के शास्त्र तो अलौकिक बात (है)। परन्तु उसको अन्तर में अपने लिये स्वाध्याय किये बिना उसका क्या रहस्य है उसका पता नहीं लगता। अनन्त काल से ग्यारह अंग भी पढ़ा है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, जब स्वरूपाचरण का शुद्ध उपयोग होता है... कोई कहे कि, शुद्ध उपयोग तो सातवें और आठवें में ही होता है। वह चारित्रसहित के शुद्ध उपयोग का वर्णन है। परन्तु शुद्ध उपयोग तो चौथे गुणस्थान (में) जब पहली अनुभव की दशा होती है, उस समय गुण-गुणी, ज्ञाता-ज्ञेय चारों का भेद छूटकर अभेद दृष्टि अन्तर में होती है। शुद्ध उपयोगरूपी आचरण हुआ। भले तीन कषाय अबुद्धिपूर्वक है। अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का नाश होता है। तीन कषाय हैं। अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। परन्तु अबुद्धिपूर्वक (है), ख्याल में नहीं (आता)। स्वरूप की ओर दृष्टि होने से भगवान आत्मा मैं ज्ञानगुण हूँ, यह गुणी है, उसका विषय द्रव्य-गुण-पर्याय है, इन सब का भेद विकल्प है। इस विकल्प को छोड़कर... देखो ! प्रभु ! '**कछु भेद न रह्यो।**' किंचित् मात्र भेद नहीं रहता। भाई ! है उसमें ?

'दीपचंदजी' साधर्मी हुए हैं, वे 'अनुभव प्रकाश' में कहते हैं। बडे अनुभवी, धर्म के महास्तंभ। साधर्मी हुए हैं। 'दीपचंदजी' गृहस्थाश्रम में (थे)। उन्होंने भी 'अनुभव प्रकाश' में चौथे गुणस्थान में अनुभव में शुद्ध उपयोग होता है, ऐसा उसमें लिखा है और ऐसा है। समझ में आया ? लेकिन सप्तम गुणस्थानवाले को शुद्ध उपयोग चारित्र विशिष्ट चारित्र सहित होता है और श्रेणी लगा दे तो शुक्लध्यान हो जात है। उसकी बात यहाँ कहेंगे। और नीचे चौथे, पाँचवे गुणस्थान में पहले अनुभवकाल में ऐसा शुद्ध उपयोग होता है, बाद में शुभ-अशुभ में आ जाते हैं और उसको शुद्ध उपयोग तो कभी कोई काल में होता है। यह शुद्ध उपयोग निरन्तर सम्यग्दृष्टि को और श्रावक पंचम (गुणस्थानवाले को) रहता नहीं, परन्तु अन्तर श्रद्धा शुद्ध ज्ञानानन्द मैं हूँ, ज्ञाता-दृष्टा (हूँ), इसके अलावा मेरी कोई चीज नहीं, ऐसी दृष्टि सदा जमी रहती है और शुद्ध

उपयोग जो यहाँ कहते हैं, वह कभी-कभी होता है। समझ में आया ?

कहते हैं, ज्ञान में, ज्ञाता में भेद नहीं, एकस्वरूप वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. भगवान महाप्रभु, महाप्रभु आत्मा, उसमें एकाकार दृष्टि होने से भेद न रहना, उसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन के काल में शुद्ध उपयोग का आचरण प्रगट होता है। आहा..हा...! सूक्ष्म पड़े लेकिन वस्तु तो यह है, भाई ! यह समझे बिना उसकी समझ में भी नहीं, श्रद्धा में भी नहीं (आये) तो अन्तर में प्रयोग कब करेगा ? समझ में आया ? भगवान आत्मा अन्तर्मुख में (है), ऐसी एकाग्रता हुए बिना उसको अनुभव सम्यक् नहीं होता। ऐसा ज्ञान, ऐसी श्रद्धा पहले पक्की किये बिना अन्तर अनुभव में प्रयोग में-प्रयत्न में नहीं लगेगा। समझ में आया ? उसका प्रयत्न तो बाहर में चालू रहेगा। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ.. वह तो होता है, शुभभाव है। अशुभ से बचने को (होता है)। समझ में आया ? परन्तु शुभभाव भी बन्ध का कारण है और शुद्ध उपयोग ही अबन्ध परिणाम है। आहा..हा...!

मुमुक्षु :- यह सब समझना पडेगा न ?

उत्तर :- जिसे आत्मा का हित करना हो तो समझना। भटकना हो तो नहीं समझना। भटकना तो है ही, उसमें नया क्या है ? समझ में आया ? वह तो पहले कहा। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' उसका अर्थ क्या हुआ ? कि अनन्तबार पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह दुःखरूप था, ऐसा कहा। 'लेश सुख न पाया' ऐसे कहा, उसमें कहा। क्योंकि शुभराग की क्रिया, राग दुःखरूप है; सुखरूप नहीं। उससे भिन्न भगवान आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता (हो), वही सुखरूप आनन्दरूप है। आहा..हा...! डॉक्टरजी ! कठिन बात, भाई !

मुमुक्षु :- राग की क्रिया में सुख नहीं है ?

उत्तर :- राग की क्रिया में कितना सुख (है) ? संसारी कल्पना का दुःख (है), भाई ! प्रभु तो आनन्दमय आत्मा है न ! तो आनन्द से ऊलटी शुभ-अशुभभाव की परिणति, वह तो दुःखरूप है। समझ में आया ? क्या ? अशुभभाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, कमाना, ब्याज कमाना, दुकान पर ध्यान रखना, वह सब भाव दुःखरूप अशुभ पाप (है) और

दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प शुभराग उठना, वह पुण्यरूप परिणान दु:खरूप भाव (है)। आहा..हा...! क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु है। उसकी उलटी पर्याय परलक्ष्यी शुभाशुभ हुई, वह आत्मा के आनन्द से विपरीत है। विपरीत है तो दु:खरूप है।

वह तो ७२ गाथा में आया है। अशुचि, विपरीत। 'समयसार' कर्ता-कर्म अधिकार (की) ७२ गाथा। 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज प्रभु कहते हैं.. समझ में आया ? देखो ! वहाँ तो 'अमृतचंद्राचार्य' ऐसा कहते हैं, हे भगवान ! ऐसा कहते हैं, हाँ ! देखो ! पुण्य-पाप के भाव सेवाल (काई) की भाँति मैल है, ऐसा कहा है। सेवाल समझते हो ? काई.. काई.. सेवाल मैला है। सेवाल की भाँति पुण्य-पाप का विकल्प भाव है। '**सेवाल की भाँति आस्रव मलरूप या मैलरूप अनुभव में आते हैं इसलिये वे अशुचि हैं..**' भगवान 'अमृतचंद्राचार्य' महाराज ९०० साल पहले दिगम्बर संत मुनि महंत महात्मा धर्म के धोरी, धर्म के स्तंभ (हुए) उन्होंने अन्दर विकल्प से यह बात की, अरे...! आत्मा ! जैसे जल में काई है, वैसे भगवान आत्मा आनन्दकन्द में ये पुण्य-पाप के भाव काई-मैल समान हैं और वे दु:खरूप हैं, देखो ! अन्तिम में आया।

'**आस्रव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं, इसलिये दु:ख के कारण हैं;...**' आस्रव आकुलता को उत्पन्न करनेवाला, उत्पन्न करनेवाला (है)।७२वीं गाथा है।

णादूँ आसवाणं असुचितं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तद्वो णियतिं कुणदि जीवो॥७२॥

भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' का श्लोक है, उसकी टीका 'अमृचंद्राचार्य'ने की। कहते हैं कि, भगवान ! शुभ-अशुभभाव तो आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। आहा..हा...! आकुलता को उत्पन्न करनेवाला होने से दु:ख का कारण है। '**और भगवान आत्मा...**' देखो ! 'भगवान' शब्द ही लिया है, हाँ ! टीका में लिया है। भगवान आत्मा अतिनिर्मल होने के कारण अत्यन्त शुचि-पवित्र है। भगवान आत्मा तो सदा निराकूल स्वभाव के कारण सुखरूप है, दु:ख का कारण नहीं है। आहा..हा...! सेठिया ! आहा..हा...! समझ में आया ?

शुभ-अशुभभाव दोनों दु:खरूप हैं, आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं। उससे रहित भगवान आत्मा अनाकूल आनन्दस्वरूप दु:ख का अकारण है अर्थात् सुख का कारण है। आत्मा

के आनन्द का, सुख का कारण तो आत्मा है। समझ में आया ? बात सुने नहीं, विचारे नहीं। क्या किसी से यह बात मिलती है ? देनेवाला है कोई ? तीर्थंकर भी किसी को दे सकते हैं ? समझाते हैं कि, भैया ! तेरी चीज तो ऐसी है। समझ में आया ?

यहाँ तो (कहा), (शुभाशुभभाव) दुःखरूप आकुलता का कारण (है)। शुभाशुभ परिणाम, शुभ हो या अशुभ हो.. जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव भी आकुलता का कारण है। आहा..हा... ! चिल्लाने लगते हैं। भगवान ! वह तो हमारे (संवत) १९८५ की साल में (चर्चा) चली थी। १९८५। कितने वर्ष हुए ? ३७ वर्ष हुए। ३० और ७-४० वर्ष में ३ कम। 'बोटाद' में व्याख्यान चलता था, उस समय तो हम सम्प्रदाय में थे। हजारों आदमी उस समय व्याख्यान में तो आते थे। नाम तो प्रतिष्ठित बहुत था न ! १९८५ की साल 'बोटाद' में बड़ी सभा (भरी थी)। बहुत मान था। सम्प्रदाय में बहुत मान था।

हमने ऐसा कहा कि,जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे वह भाव धर्म नहीं। धर्म से बँध होता नहीं, बँध जिससे होता है, वह धर्म नहीं। १९८५ की बात है। ३७ वर्ष हुए। ४० में ३ कम। सम्प्रदाय में (कहा था), समझे ? खलबली मच गई। लोगों में खलबली मच गई। सभा को हमारे प्रति प्रेम था न ! सभा तो शान्त बैठी थी, सब सुनते थे। लेकिन एक (जिसने) वेष पहना था, उनको खलबली हो गई। वोसरे.. वोसरे.. (बोलने लगे), यह धर्म वोसरे... वोसरे.. भैया ! सुन तो सही, प्रभु ! बन्धन जिससे हुआ, उस धर्म की पर्याय से बन्धन होता है ? धर्म की पर्याय से बन्धन होता है तो अबन्ध कैसे होता है ? बिलकुल ठीक है ? तीर्थंकर गोत्र का बँध पड़ता है न ? प्रकृति बँधती है न ? आत्मा की शान्ति, संवर, निर्जरा से बँध पड़ता है ? विकल्प है वह शुभ, लेकिन है आकुलता, है दुःख, उसका तीर्थंकर गोत्र का बन्ध पड़ता है। आहा..हा... ! चिल्लाने लगे। सुनो तो सही, भाई ! शान्ति से सुनो तो सही।

पंच महाव्रत का परिणाम भी आस्रव है। ये दो बात कही थी। उस समय, हाँ ! १९८५ की साल में। ४० वर्ष में ३ कम। खलबली (मच गई)। सम्प्रदाय में थे न। मार्ग ऐसा है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। मानो, न माने, आज मानो, कल मानो, दूसरा मार्ग तीनकाल में वीतरागमार्ग में है नहीं। देखो ! क्या कहते हैं ? देखो !

शुभभाव विकल्प उठता है, वह भी नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। वह शुभभाव तो दूसरा है, परन्तु आत्मा वस्तु है और उसमें आनन्दगुण है, उसमें ज्ञान है, यह ज्ञान तीनों को द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, ऐसा लक्ष्य में लेना वह भी एक शुभ विकल्प है। भेद से विकल्प उठता है (और) विकल्प आस्रव है। आहा..हा...! समझ में आया ? 'अनुभव प्रकाश' में भाई, शुभ उपयोग के तीन भेद लिये हैं। शुभ उपयोगके तीन भेद (लिये हैं)। 'दीपचंदजी' साधर्मी। 'दीपचंदजी' हुए न ? उन्होंने 'अनुभव प्रकाश' में तीन बोल लिये हैं कि, शुभ उपयोग के तीन भेद (हैं)। दया, दान, व्रत, का परिणाम शुभ। भक्ति का भाव शुभ। गुण-गुणी का भेद का विकल्प उठता है वह शुभ। 'अनुभव प्रकाश' में है। 'दीपचंदजी' कृत 'अनुभव प्रकाश'। हमारे पास यहाँ नहीं है, वहाँ है। उसमें है।

शुभ उपयोग के तीन भेद (१) दया, दान, व्रतादि का भाव, शुभपरिणाम है, शुभ उपयोग है। (२) भक्ति का भाव शुभ उपयोग है। और (३) गुण-गुणी का भेद करना, विकल्प उठना वह शुभ उपयोग है। आहा..हा...! ये बात यहाँ करते हैं।

मुमुक्षु :- कल दोपहर को आया था न ?

उत्तर :- हाँ, कल दोपहर को बहुत आया था। आहा..हा...! अरे..! भगवान ! यह तो वीतरागमार्ग है, प्रभु ! वीतरागमार्ग में, राग से लाभ होता है (ऐसा माने) तो वह वीतरागमार्ग ही नहीं। भाई ! आहा..हा..!

वीत-राग। रागरहित दृष्टि, रागरहित ज्ञान और रागरहित स्थिरता-चारित्र। उसका नाम सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकरों का वीतरागमार्ग है। पूर्ण न हो तो बीच में राग आता है, समझे ? वह पुण्यबन्ध का कारण है। अशुभ से बचने को आता है, परन्तु वह अबन्ध परिणाम नहीं, अबन्ध परिणाम नहीं। अबन्ध परिणाम अर्थात् अबन्ध-पूर्ण परिणामरूपी मुक्ति, उसका अबन्ध परिणामरूपी मोक्ष का मार्ग, अबन्धस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से अबन्धपरिणाम उत्पन्न होता है। क्या कहा ?

अबन्ध के उपर तीन ली। सुनो। (१) अबन्ध नाम मुक्ति। बन्धरहित परिणाम पूर्ण मुक्ति। अबन्ध स्वभाव है न ? मुक्ति अर्थात् अबन्ध स्वभाव। बन्धरहित अर्थात् मुक्त स्वभाव। एक

बात। (२) उसका मार्ग। अबन्ध परिणाम मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, अबन्धपरिणाम हैं। अबन्धपरिणाम से अबन्धपरिणामी मुक्ति होती है। (३) यह अबन्धपरिणआम, अबन्धस्वरूप जो मुक्त आत्मा भगवान वर्तमान मुक्त है। पुण्य-पाप, विकल्प, शरीर, कर्म से रहित मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा अभी है। शक्तिरूप से मुक्ति है। इस शक्तिरूप मुक्त का आश्रय करने से अबन्धपरिणाम उत्पन्न होता है। इस अबन्धपरिणाम से अबन्ध ऐसी मुक्ति प्राप्त होती है। आहा..हा... ! कहो, समझ में आया ?

तीनलोक के नाथ ऐसी बात अनन्तकाल से कहते आये हैं। 'एक होय तीनकाल में परमार्थ का पंथ।' भगवान वीतरागमार्ग में 'एक होय तीनकाल में परमार्थ का पंथ।' दो-तीन मार्ग होते नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... ! 'दौलतरामजी' वह कहते हैं, देखो ! एक तो अपने से, अपने में लिया और गुण-गुणी का भेद भी निकाल दिया। ऐसी अन्तर की दृष्टि करना, उसका नाम स्वरूपाचरण, स्वरूप उपयोग, शुद्ध उपयोग कहने में आता है। वही संवर, निर्जरारूप है और वही मुक्ति का कारण है। अब गाथा-९। आठवीं (गाथा का) सब अर्थ आ गया।

स्वरूपाचरणचारित्र (शुद्धोपयोग) का वर्णन

जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प, वच भेद न जहाँ;
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा;
प्रगटी जहाँ दृगज्ञान-व्रत चे, तीनधा ऐकै लसा ।।९।।

अन्वयार्थ :- (जहाँ) जिस स्वरूपाचरणचारित्र मे (ध्यान) ध्यान, (ध्याता) ध्याता और (ध्येय को) ध्येय-इन तीन के (विकल्प) भेद (न) नहीं होता, तथा (वहाँ) जहाँ (वच) वचन का (भेद न) विकल्प नहीं होता, (तहाँ) वहाँ तो (चिद्भाव) आत्मा का स्वभाव ही (कर्म)

कर्म, (चिदेश) आत्मा ही (करता), कर्ता, (चेतना) चैतन्यस्वरूप आत्मा ही (किरिया) क्रिया होता है - अर्थात् कर्ता, कर्म और क्रिया-यह तीनों (अभिन्न) भेदरहित एक (अखिन्न) अखण्ड (बाधारहित) हो जाते हैं और (शुद्ध उपयोग की), शुद्ध उपयोग की (निश्चल) निश्चल (दशा) पर्याय (प्रगटी) प्रगट होती है; (जहाँ) जिसमें (दृग-ज्ञान-व्रत) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (ये तीनधा) यह तीनों (एक) एकरूप-अभेदरूप से (लसा) शोभायमान होते हैं।

भावार्थ :- वीतरागी मुनिराज, स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं तब ध्यान, ध्याता और ध्येय ऐसे भेद नहीं रहते, वचन का विकल्प नहीं होता, वहाँ (आत्म ध्यान में) तो आत्मा ही *कर्म और आत्मा ही कर्ता और आत्मा का भाव वह क्रिया होती है, अर्थात् कर्ता-कर्म और क्रिया-ये तीनों बिलकुल अखण्ड अभिन्न हो जाते हैं और शुद्धोपयोग की अचल दशा प्रगट होती है, जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक साथ-एकरूप होकर प्रकाशमान होते हैं ।।९।।

'**स्वरूपाचरणचारित्र (शुद्धोपयोग) का वर्णन।**' वर्णन करते हैं। नौंवाँ श्लोक, नौंवाँ श्लोक। सुनो तो सही, भैया ! ये मनुष्यदेह, उसमें वीतराग की सत्य बात सुनने भी न मिले तो वह प्रयोग में, रुचि में कब लायेगा ? समझ में आया ?

जहँ ध्यान ध्याया ध्येयको न विकल्प, वच भेद न जहाँ;
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।
तीनों अभिन्न अखिन्न अशुद्ध उपयोग की निश्चल दशा;
प्रगटी जहाँ दृगज्ञान-व्रत ये, तीनधा ऐकै लसा ।।९।।

ओ..हो..हो... ! गागर में सागर भर दियाहै। बहुत थोड़े शब्द में 'दौलतरामजी' ने भर दिया। परन्तु पढ़े कौन, विचारे (कौन) ? निवृत्ति नहीं, समय नहीं, समय नहीं है, भाई !

---

* कर्म (अर्थात्) कर्ता द्वारा हुआ कार्य। कर्ता (अर्थात्) स्वतंत्ररूप से करे सो कर्ता;, क्रिया (अर्थात्) कर्ता द्वारा होनेवाली प्रवृत्ति।

मुमुक्षु :- गागर में सागर की बात...

उत्तर :- ना, ना। आता है, आता है। इसमें अर्थ में भी है, हाँ ! इसके अर्थ में भी है, कहीं है, देखो ! गागर में सागर शब्द है, मेरे घर का शब्द नहीं है, हाँ ! कहीं पर होगा, ऐ..ई.. ! 'अपनी कविता में सरल ललित शब्दों द्वारा गागर को सागर में भरने का प्रयत्न किया है।' वह पहले से आता है, नयी बात नहीं है। हम जो शब्द कहते हैं वह शब्द शास्त्र में सि निकाल देते हैं। यह तो (इन्होंने) लिखा है, लेकिन यह बात पहले से चली आयी है, पहले से चली आयी है। 'दौलतरामजी' ने 'छहढाला' में गागर में सागर भर दिया है। थोड़े में बहुत कह दियाहै। थोड़े में बहुत कह दिया है तो गागर में सागर भर दिया है, (ऐसा कहा)। समझ में आया ?

क्या कहते हैं ? देखो ! '**जिस स्वरूपाचरणचारित्र में ध्यान, ध्याता और ध्येय इन तीन के भेद नहीं होता,...**' शुद्ध उपयोग में सम्यग्दर्शन के पहले काल में और बाद में जब-जब शुद्ध उपयोग होता है, तब-तब ऐसा होता नहीं। ऐसा कहते हैं। 'कर्ता-कर्म अधिकार' लिया न ? 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' १४३-१४४ में भी यही लिया है कि, मैं आत्मा अबद्ध हूँ, ऐसा भी एक विकल्प है, मैं बद्ध हूँ, वह भी एक विकल्प-राग है। उससे पार है, वही समयसार आत्मा है। वहाँ भी वहीं लिया है। १४४ गाथा। भगवान आत्मा.. ! समझ में आया ?

मैं शुद्ध हूँ, वह भी एक विकल्प (है)। मैं अशुद्ध हूँ, वह भी एक परलक्ष्यी विकल्प (है)। उसको छोड़कर निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य में लीन होना वही सम्यग्दर्शन ज्ञान को पाते हैं। उसका नाम ऐसा लिया है। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? १४४ है न ? १४४। '**सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं। सव्वणयपक्खरहिदो...**' '**सव्वणयपक्खरहिदो**' (अर्थात्) सर्व नय के पक्षरहित। अनन्त विज्ञानघन परमात्मा समयसार को जब आत्मा निर्विकल्परूप से अनुभवता है, उसी समय सम्यक्रूप से श्रद्धा में आता है, जानने में आता है, तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नाम पाता है। १४४ में है। ये कोई बारहवें गुणस्थान की बात नहीं है, हाँ ! यह चौथे गुणस्थान की बात है। १४४ (गाथा), 'कर्ता-कर्म अधिकार'। वही बात यहाँ कहते हैं। आहा..हा... ! कठिन बात (है), भाई !

कहते हैं, मैं शुद्ध हूँ, वह भी विकल्प का उत्थान (हुआ)। पुण्यबन्ध का कारण है। मैं

अशुद्ध हूँ, कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में मेरी पर्याय अशुद्ध है, वह भी एक विकल्प है। दोनों को छोड़कर शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा.. अरे... ! आठ वर्ष के बालक भी सम्यग्दर्शन पाकर शुद्ध उपयोग में आकर केवलज्ञान पाते हैं। मंडूक जैसा एक मैढ़क, वह भी भगवान के समवसरण में जाता था। अन्तर में उपयोग लगाकर शुद्ध उपयोग का ध्यान कर लेता था। आठ वर्ष की लड़की, चक्रवर्ती की लड़की, आठ वर्ष की, समझे ? वह भी भगवान के समवसरण में जाती थी और भगवान की वाणी सुनती थी। ऐसा सन्देश आया तो उसमें से भगवान ! तुम आत्मा हो। अपने ७२ वीं गाथा में कहा। भगवान आत्मा ! 'अमृतचंद्राचार्य' तो ऐसा ही कहते है-भगवान आत्मा तो शुद्ध आनन्दकन्द है न, प्रभु ! वह तो दु:खरूप है ही नहीं। उसकी पर्याय में पुण्य-पाप का भाव है, वह दु:खरूप है। वह आत्मा नहीं, वह तो आस्रवतत्त्व है। सात तत्त्व में कर्म, शरीर, वाणी अजीवतत्त्व है। शुभाशुभभाव आस्रवतत्त्व है, भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व है। सब सात तत्त्व भिन्न होते हैं।

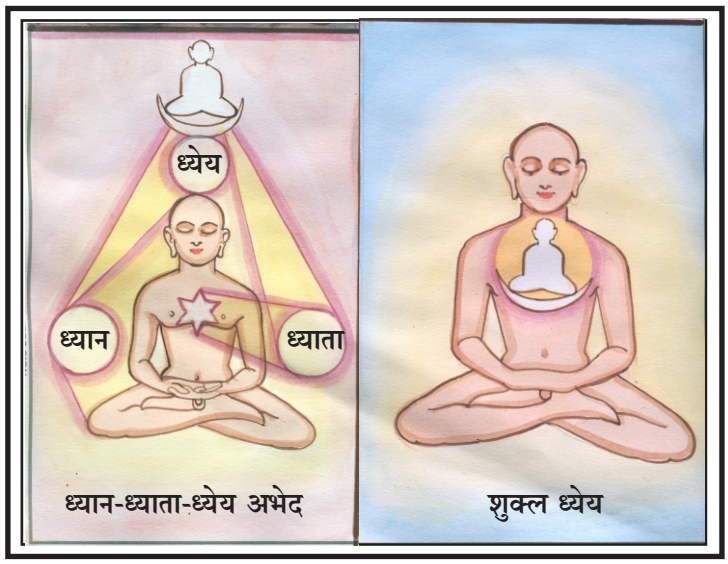

ज्ञायक भगवान आत्मा तो शुद्ध, बुद्ध आनन्दघन चिदानन्द (है)। उसमें भी गुण-गुणी का भेद, ये ध्याता-ध्यान और ध्येय का भेद उठाना, वह भी एक विकल्प है। आहा..हा... ! समझ में आया ? आचरण में ध्यान, मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा उसमें है, समझे ? चित्र है न ? भाई ! चित्र है। चित्र है उसमें देखो ! ध्यान। ध्येय सिद्ध का, ये ध्यान के भेद लिखे हैं। चित्र है, चित्र है।

यहाँ तो कहते हैं, एक दृष्टि बिना एकाकार होता नहीं, एकाकार हुए बिना निर्विकल्पता

होती नहीं, निर्विकल्पता बिना एक, अभेद का अनुभव होता नहीं। आहा..हा...! समझ में आया ? यह बात बड़ी नहीं है। बड़ी (बात) तो चारित्र, चरना, अन्दर लीनता (करनी), आनन्दकन्द छट्ठे-सातवें गुणस्थान में चारित्र की दशा.. ओ..हो..हो..! धन्य दशा ! हजारों बार चारित्र में आनन्द.. आनन्द सप्तम में हजारों बार आते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में झुलते-झुलते क्षण में छठे (में) विकल्प में आ जाये, क्षण में आनन्द (में)। यह दशा तो परमेश्वर दशा, वह दशा तो परमेश्वर दशा, पंच परमेष्ठी की दशा (है)।

यहाँ तो कहते हैं कि, उसके पहले सम्यग्दर्शन पाने की दशा में भी.. समझ में आया ? ऐसे स्वरूप की दृष्टि में भेद दृष्टि रहती नहीं। मैं ध्यान करनेवाला, मैं ध्याता। मैं ध्यान करनेवाला और यह ध्यान। किसका ? आत्मा का करता हूँ। अथवा ध्येय। मेरा पूर्ण स्वरूप का ध्येय। ऐसा तीन प्रकार का विकल्प नहीं होता। आहा..हा...! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ? वह भेद है न ? वस्तु ऐसी है नहीं। 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज ने सातवीं गाथा में कहा।

ववहारेणवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ।।७।।

सातवीं गाथा। भगवान आत्मा... ! यह ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है-ऐसा भेद भी उसमें नहीं है-ऐसा कहते हैं। वह तो शास्त्र के अनुसार उसमें लिखा है, अपने घर की कोई बात नहीं। सातवीं गाथा भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्य' दिगम्बर आचार्य, जिनकी 'समयसार' की सातवीं गाथा। '**ववहारेणुवदिस्सदि**' आत्मा में ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है-ऐसा भेद व्यवहार से है। वस्तु तो अभेद है। वस्तु अन्तर में सब गुण को पी गई है। आहा..हा...! वस्तु में अनन्त गुण हैं परन्तु अभेद दृष्टि में भेद दिखते नहीं। भेद नहीं है, ऐसा नहीं। एक ही आत्मा है और आत्मा में दर्शन, ज्ञान, आनन्द आदि है नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु जब अन्तर दृष्टि होती है, तब अभेद में भेद दिखते नहीं। भेद दिखे तो अभेद रहता नहीं। समझ में आया ? आहा..हा...! विकल्प .. हैं। यह तो कई बार कहते हैं। यह बात कौन-से गुणस्थान की होगी ?

भाई ! भगवान ! पहले शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है, तब ऐसी दशा होती है। बाद में सदा नहीं रहती। मुनियों को तो सदा शुद्धोपयोग सातवें में अनेक बार, हजारों बार, एक दिन में

हजारों बार शुद्धोपयोग (होता है)। क्षण में विकल्प उत्पन्न होता है, निंद्रा भी आती है तो थोड़ी पौन सैकन्ड रात्रि को (आती है)। भावलिंगी सन्त साधु जिनका छठा गुणस्थान, पौन सैकन्ड निंद्रा, फट..! अप्रमत्त दशा हो जाती है। समझ में आया ? दो घंटा, एक घंटा, आधा घंटा भी मुनि को निंद्रा नहीं होती। आधा घंटा, निंद्रा आवे तो गुणस्थान नहीं रहता।

मुमुक्षु :- छठा गुणस्थान में इतना काल..

उत्तर :- छठा गुणस्थान इतना काल रहे तो गुणस्थान नहीं रहता, ऐसा शास्त्र में लेख है। सूक्ष्म पड़ेगा। उससे भी थोड़ा काल निंद्रा आ जाती है। ऐसी दशा (है)। तुरन्त सप्तम, तुरन्त छठा, तुरन्त सप्तम। ओ..हो...! संतदशा, मुनिदशा केवलज्ञान के झूले में झूलते हैं। मानो अभी अल्प काल में केवलज्ञान लिया या लेंगे। ऐसी दशा की तो बात क्या (करनी) !

यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शन में ये भेद भी उसमें रहते नहीं। शुद्धउपयोग जमता है (तो) ध्याता-ध्येय-ध्यान का भेद नहीं। वचनभेद नहीं होता। '**वहाँ तो आत्मा का स्वभाव ही कर्म,...**' है। देखो ! आहा..हा...! विकल्प आत्मा का कार्य ही नहीं। कर्म लिया ना ? देखो ! '**चिद्भाव कर्म**' कर्म अर्थात् कार्य। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि होती है वह, चिद्भाव-ज्ञानभाव उसका कार्य है। विकल्प कार्य नहीं। भगवान कर्ता और राग कर्म, (ऐसा) आत्मा में दृष्टि में, अनुभव की दृष्टि के काल में नहीं है। समझ में आया ? आहा..हा..!

'**आत्मा का स्वभाव ही कर्म,...**' कर्म शब्द का अर्थ कार्य। कर्म के बहुत प्रकार हैं। जड़ कर्म परमाणु की अवस्था, वह जड़ (है)। दया, दान, शुभाशुभ परिणाम वह शुभ-अशुभ विकारी कर्म। कर्म (अर्थात्) भावकर्म। यह आत्मा का शुद्धभाव कर्म। आहा..हा...! शुद्ध भावकर्म कैसे आया ? कहा न ? '**चिद्भाव कर्म**' भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में पड़ा, एकाकार होता है (तब) शुद्धभाव ही उसका कार्य रह जाता है। उसका कार्य, राग मेरा कार्य और मैं कर्ता-ऐसी सम्यग्दर्शन में पहले अनुभवकाल में (नहीं होता)। बाद में भी जब-जब शुद्धउपयोग होता है, तब वह अपना कार्य जानते हैं। बाद में सम्यग्दृष्टि को शुभराग आता है, लेकिन यह शुभराग अपना कार्य है, ऐसा सम्यग्दृष्टि नहीं मानते। मेरा ज्ञाता का ज्ञेय है। मैं तो जाननेवाला ज्ञाता-दृष्टा (हूँ)। गाते थे न ? ज्ञाता-दृष्टा।

सम्यग्दृष्टि लड़ाई में हो या भोग में हो, शुभ-अशुभ विकल्प का ज्ञानी ज्ञाता-दृष्टा है। उसका कर्ता या भोक्ता परमार्थ से अन्तर दृष्टि में है नहीं। यहाँ तो उपयोग के काल की बात ली है। समझ में आया ? चिद्भाव अपना कर्म-कार्य (है)। आहा..हा...! वह भी यह कार्य और में कर्ता, ऐसा विकल्प नहीं। वह बाद में कहेंगे। समझ में आया ? लेकिन ऐसा अन्तर में शुद्ध भगवान आत्मा की दृष्टि के काल में उपयोग प्रथम अनुभव के काल में आत्मा का ज्ञाता का कार्य ज्ञान रह जाता है। समझ में आया ?

'**चिदेश करता...**' आत्मा कर्ता। निर्मल पर्याय का कार्य, कर्म दूर हुए तो हुआ अथवा राग-कषाय मन्द हुआ तो निर्मल पर्याय का-सम्यग्दर्शन का कार्य हुआ, ऐसा नहीं। '**चिदेश करता..**' भगवान आत्मा ही निर्मल पर्याय का कर्ता (है)। निर्मल पर्याय भगवान आत्मा का कार्य। समझ में आया ? फिर क्रिया की बात करेंगे। उसकी बात विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❋

अतीन्द्रिय आनन्दमें झूलते मुनि छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें रहते जितने कालमें आत्मशुद्धिकी दशामें आगे बढ़े बिना, वहींके वहीं नहीं रहते । छठ्ठे-सातवें गुणस्थानमें रहते हुए भी आत्मशुद्धिकी दशा विकसित होती ही रहती है । केवलज्ञान न हो तब-तक मुनिराज शुद्धिकी वृद्धि करते ही जाते हैं । यह तो मुनिराजकी अंतरसाधना है, जगतके जीव मुनिराजकी इस अंतरसाधनाको नहीं देख पाते । साधना कोई बाह्यसे देखनेकी वस्तु नहीं है, क्योंकि यह तो अन्तरकी दशा है । वनमें अकेले विचरण करते हों, बाध-सिंहकी दहाड़ गुँजती हो, सिर पर पानी बरसता हो व शरीरमें रोग हो तो भी मुनिराजको इनका बिलकुल भान नहीं रहता; वे तो अन्तरमें एकाग्र हुए रहते हैं - ऐसे मुनिराजकी अंतर-शुद्धि तो वृद्धिगत होती ही है । अन्तरमें शुद्धता हेतुक चलनेवाला पुरुषार्थ उग्र होता जाता है । (परमागमसार - ४८८)